महाभारत में वर्णित दैव तथा पुरुषार्थ सम्बन्धी शिक्षा की आधुनिक युग में प्रासंगिकता

सन्तोष कुमार पाण्डेय,
शोध छात्र,
प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग,
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
जौनपुर, उत्तर प्रदेश।
सम्बद्ध– वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर,
उत्तर प्रदेश।
Email→ SANTOSHAU4@GMAIL.COM

सत्यपाल सिंह,
शोध छात्र,
प्राचीन इतिहास विभाग,
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ज्ञानपुर, भदोही (उ०प्र०)
संबद्ध – महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी (उ०प्र०)
satyapal.ias@gmail.com

शोध सारांश–

महाभारत भारतीय संस्कृति की बहुमूल्य निधि है। इसे भारतीय समाज में अति महत्वपूर्ण एवं अति पवित्र धार्मिक ग्रन्थों की श्रेणी में शामिल किया जाता है, परन्तु मात्र धार्मिक ग्रन्थ समझकर इसमें समाहित उच्च कोटि की शिक्षाओं की उपेक्षा कर देना किसी भी दृष्टि से तर्कसंगत नहीं है। इसमें अन्य उपयोगी ज्ञान के साथ–2 दैव एवं पुरुषार्थ सम्बन्धी शिक्षा का भी सुन्दर वर्णन मिलता है। दैव (भाग्य) एवं पुरुषार्थ के मध्य सामंजस्य स्थापित करने वाली यह शिक्षा मानव जीवन की सम्पूर्ण यात्रा के दौरान व्यक्ति को मिलने वाली सफलता/असफलता की अवधि में नितांत उपयोगी हो सकता है। इसमें दैव व पुरुषार्थ को परस्पर सहयोगी बताकर व्यक्ति की सफलता में इन दोनों का सन्तुलित योग अनिवार्य माना गया। जहाँ दैव की तुलना बीज से की गई, वहीं पुरुषार्थ की सादृश्यता खेत से स्थापित की गई। अर्थात् जिस प्रकार अनाज उत्पन्न करने में बीज व खेत दोनों अनिवार्य हैं, ठीक उसी प्रकार व्यक्ति की सफलता में दैव एवं पुरुषार्थ दोनों का सहयोग अपेक्षित है। दैव एवं पुरुषार्थ एक दूसरे के पूरक हैं तथा दैव एवं पुरुषार्थ में से पुरुषार्थ ही श्रेष्ठ है। अतः व्यक्ति को स्वयं के परिश्रम/पुरुषार्थ पर विश्वास रखते हुए सम्यक् कर्म करते रहना चाहिए।

प्रस्तुत शोध आलेख में महाभारत में अन्तर्निहित दैव तथा पुरुषार्थ सम्बन्धी शिक्षा की सम्यक् विवेचना करने के साथ–2 आधुनिक युग में उसकी प्रासंगिकता पर भी विचार करने का प्रयास किया जाएगा।

मुख्य शब्द–
महाभारत, दैव, भाग्य, पुरुषार्थ, परिश्रम, शिक्षा, सफलता, असफलता, मनुष्य।

महाभारत संस्कृत भाषा में रचित विश्व का सर्वाधिक विस्तृत साहित्यिक ग्रन्थ है। इसे सनातन धार्मिक व्यवस्था में अति महत्वपूर्ण ग्रन्थ समझा जा सकता है। प्राचीन भारतीय ज्ञान का विश्वकोश माने जाने वाले इस ग्रन्थ के वर्तमान संस्करण में कुल एक लाख से अधिक श्लोक हैं। इसे 'जयसंहिता', 'भारत' 'शतसाहस्त्री संहिता', जैसे विविध नामों से भी जाना जाता है। धार्मिक मान्यता के अनुसार इसमें मूल रूप से संकलित श्लोकों का उच्चारण वेदव्यास जी ने जबकि लेखन का कार्य भगवान गणेश जी ने किया। यह भारतीय संस्कृति की सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि है। स्वयं आदिपर्व में इसे धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र व कामशास्त्र का मिश्रित ग्रन्थ बताया गया है। यह कुल 18 पर्व (अध्याय) में विभाजित है जो कि निम्नलिखित है–

आदिपर्व, सभापर्व, अरण्यकपर्व, विराटपर्व, उद्योगपर्व, भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शल्यपर्व, सौप्तिक पर्व, स्त्रीपर्व, शान्तिपर्व, अनुशासनपर्व, अश्वमेधिक पर्व, आश्रमवासिकापर्व, मौसुलपर्व, महाप्रस्थानिकपर्व, स्वर्गारोहणपर्व, परिशिष्ट– खिलभाग (हरिवंश पर्व)। उपर्युक्त सभी पर्वों में शान्तिपर्व (12वाँ पर्व) महाभारत का सबसे बड़ा पर्व है। राजधर्म का विस्तार से वर्णन प्रस्तुत करने के कारण यह 'राजधर्मपर्व' के नाम से भी जाना जाता है। इस अध्याय (पर्व) के अधिकांश श्लोक मनुस्मृति में भी अक्षरशः प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार महाप्रस्थानिक पर्व सबसे छोटा पर्व है। इसमें मात्र 3 अध्याय हैं। भारतीय जनमानस में सर्वाधिक पवित्र व सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ समझी जाने वाली 'भगवद्गीता' इसी महाभारत के भीष्मपर्व (छठवें पर्व) का अंश है। कुल मिलाजुलाकर यह स्वयं के भीतर अनेक उपयोगी व विस्तृत विषय वस्तुओं को समाहित किए हुए है।

व्यक्ति अपने जन्म से मृत्यु तक सम्पूर्ण जीवन अवधि के दौरान निरन्तर कुछ न कुछ प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। इस प्रयत्न में कई बार उसे सफलता जबकि कई बार असफलता का सामना करना पड़ता है। जब व्यक्ति अपने लक्ष्य को पा लेने में सफल हो जाता है, तब इसका श्रेय वह अपने पुरुषार्थ को देता है। कुछ व्यक्ति को कम पुरुषार्थ में ही अत्यधिक सफलता प्राप्त हो जाती है जबकि कुछ लोगों को कठिन परिश्रम करने के बाद भी मनवांछित परिणाम नहीं मिल पाता है। अतः मनुष्य के मन में यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि, क्या मात्र पुरुषार्थ के सहारे आपेक्षित सफलता प्राप्त की जा सकती है? या फिर सफलता की प्राप्ति के लिए दैव का साथ आवश्यक है ? आखिर दैव एवं पुरुषार्थ में से किसे सर्वोपरि समझा जाए? व्यक्ति के अन्तर्मन में स्वभाविक रूप से जन्म लेने वाले इन समस्त प्रश्नों का समुचित उत्तर महाभारत के अनुशासन पर्व के अध्याय–6 में दैव एवं पुरुषार्थ के विवेचन के क्रम में मिलता है। इस सम्पूर्ण अध्याय में भीष्म–युधिष्ठिर संवाद के माध्यम से दैव तथा पुरुषार्थ को परस्पर सम्बन्धित मानते हुए अनेक उदाहरण के द्वारा दैव (भाग्य) की अपेक्षा पुरुषार्थ को श्रेष्ठ बताया गया है। इसी अध्याय में एक श्लोक में भीष्म युधिष्ठिर के दैव एवं पुरुषार्थ की श्रेष्ठता से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर देते हुए बताते हैं कि, ''किसान खेत में जाकर जैसा बीज

बोता है, उसी के अनुसार उसको फल मिलता है। इसी प्रकार पाप अथवा पुण्य जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फल मिलता है। जैसे बीज खेत में बोए बिना फल नहीं दे सकता ठीक उसी प्रकार दैव (प्रारब्ध) भी पुरुषार्थ के बिना सिद्ध नहीं हो सकता है''–

''यादृशं वपते बीजं क्षेत्रमासाद्य कर्षकः।
सुकृते दुष्कृते वापि तादृशं लभते फलम्।।
यथा बीजं विना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम्।
तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति।।''[1]

इस अध्याय में पुरुषार्थ की तुलना खेत के साथ जबकि दैव (भाग्य) की तुलना खेत में बोए गए बीज से की गई, साथ ही साथ यह भी बताया गया कि जिस प्रकार खेत व बीज के संयोग से अनाज पैदा होता है, ठीक उसी प्रकार दैव (प्रारब्ध) एवं पुरुषार्थ (परिश्रम) के मिलन से मनुष्य को आपेक्षित सफलता प्राप्त हो सकती है–

''क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीजमुद्राहृतम्।
क्षेत्रबीजसमायोगात् ततः सस्यं समृद्धयते।।''[2]

इसमें दैव पर पुरुषार्थ की श्रेष्ठता स्थापित करते हुए कहा गया कि पुरुषार्थी (परिश्रमी) मनुष्य सदैव भाग्य के अनुसार प्रतिष्ठा प्राप्त करता है परन्तु जो अकर्मण्य है, वह सम्मान से भ्रष्ट होकर घाव पर नमक छिड़कने के समान असहाय दुःख भोगता है –

''कृती सर्वत्र लभते प्रतिष्ठां भाग्यसंयुताम्।
अकृती लभते भ्रष्टः क्षते क्षारावसेचनम्।।''[3]

मनुष्य को सदैव धर्मशास्त्रों में निर्दिष्ट व न्यायोचित ढंग से समुचित कर्म करते रहना चाहिए। यदि मनुष्य सत्कर्म करता है तो उसे सुख मिलता है जबकि यदि वह दुष्कर्म (बुरे कर्म) करता है तब उसे कष्ट (दुःख) भोगना पड़ता है।[4] अतः स्पष्ट है कि सुख अथवा दुःख का मूल कारण मनुष्य का स्वयं का किया हुआ कर्म है। सिर्फ कर्म करके ही आपेक्षित सफलता, सम्मान व प्रतिष्ठा प्राप्त की जा सकती है। महाभारत में इस विषय में वर्णन करते हुए कहा गया है कि ''कर्म से ही सब कुछ मिल सकता है, भाग्य के भरोसे बैठे रहने वाले को कुछ नहीं मिलता है। इस जगत में पुरुषार्थ (परिश्रम) करने से स्वर्ग, भोग, धर्म में निष्ठा व बुद्धिमत्ता इत्यादि दुर्लभ चीजों की प्राप्ति होती है। नक्षत, देवता, नाग, यक्ष, चन्द्रमा, सूर्य व वायु आदि पुरुषार्थ के माध्यम से ही मनुष्य लोक से स्वर्ग लोक तक पहुँच पाने में सफल हुए हैं''–

''तपसा रूपसौभाग्यं रत्नानि विविधानि च।
प्राप्यते कर्मणा सर्वं न दैवादकृतात्मना।।
तथा स्वर्गश्च भोगश्च निष्ठा या च मनीषिता।
सर्वं पुरुषकारेण कृतेनहोपलभ्यते।।
ज्योतींषि त्रिदशा नागा यक्षाश्चन्द्रार्कमारुताः।
सर्वं पुरुषकारेण मानुष्याद् देवतां गताः।।''[5]

इस ग्रन्थ में जहाँ एक तरफ परिश्रम (पुरुषार्थ) करने से प्राप्त होने वाले फल की चर्चा की गई है, वहीं दूसरी तरफ पुरुषार्थ न करने वाले मनुष्य को चेतावनी देते हुए कहा गया है कि, ''जो पुरुषार्थ नहीं करते, वे धन, मित्र, ऐश्वर्य, उत्तम कुल तथा दुर्लभ समझी जाने वाली लक्ष्मी का भी उपभोग नहीं कर सकते हैं''–

''अर्थो वा मित्रवर्गो वा ऐश्वर्यं वा कुलान्वितम्।
श्रीश्चापि दुर्लभा भोक्तुं तथैवाकृतकर्मभिः।।''[6]

एक अन्य प्रसंग में कर्म (पुरुषार्थ) न करने वाले व्यक्ति को सचेत करते हुए बताया गया कि, ''जो मनुष्य परिश्रम न करके केवल दैव (भाग्य) का अनुसरण करता है, वह दैव का आश्रय लेकर ठीक वैसे ही कष्ट उठाता है, जैसे कोई स्त्री अपने नपुंसक पति को को पाकर भी कष्ट ही भोगती है।'' अर्थात् जिस प्रकार एक सुन्दर स्त्री पौरूषहीन/नपुंसक पति का साथ पाकर भी यौवन व सन्तान सुख से वंचित रह जाती है, ठीक उसी प्रकार परिश्रम (कर्म) न करने वाला मनुष्य दैव/भाग्य का साथ पाकर भी लौकिक तथा पारलौकिक सुखों से वंचित रह जाता है।

"अकृत्वा मानुषं कर्म यो दैवमनुवर्तते।
वृथा श्राम्यति सम्प्राप्य पतिं क्लीबमिवाङ्गना।।"[7]

इस ग्रन्थ में पुरुषार्थ (परिश्रम) पर दैव (भाग्य) की निर्भरता बताते हुए कहा गया कि, "किया हुआ पुरुषार्थ ही दैव का अनुसरण करता है परन्तु पुरुषार्थ न करने पर दैव किसी को कुछ नहीं दे सकता है"–

"कृतः पुरुषकारस्तु दैवमेवानुवर्तते।
न दैवमकृते किंचित् कस्यचिद् दातुमर्हति।।"[8]

महाभारत के अनुशासन पर्व के अन्तर्गत दानधर्म पर्व के अध्याय–6 में उन सभी लोगों का विस्तृत उल्लेख मिलता है जिन्होंने स्वयं के पुरुषार्थ के बल पर स्वर्ग का सुख प्राप्त किया अथवा किसी कारण से नर्क में कष्ट भोगना पड़ा।[9] इस वर्णन से स्पष्ट पता चलता है कि सामान्य मनुष्य से लेकर ऋषि–मुनि व चक्रवर्ती राजा तक सभी प्राणी जहाँ एक तरफ स्वयं के परिश्रम (पुरुषार्थ) के प्रभाव से समस्त प्रकार का सुख प्राप्त करते हुए स्वर्ग तक पहुंच पाने में सफल रहे, वहीं पुरुषार्थ में जानबूझकर अथवा अज्ञानतावश रह गई कमी के कारण कष्ट भी भोगना पड़ा। स्वयं महाबलि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जब पाण्डवों का राज्य हड़प लिया, तब पाण्डवों ने उसे बाहुबल (पुरुषार्थ) के दम पर ही प्राप्त किया न कि दैव के भरोसे।[10] इसी प्रकार तप व नियम में संयुक्त रहकर कठोर व्रत का पालन करने वाले ऋषि–मुनि भी स्वयं

अर्जित तपोबल (पुरुषार्थ) से ही किसी को शाप देते हैं न कि दैव बल से।[11] स्वयं तीनों लोकों के स्वामी, दैत्यों तथा देवताओं की सृष्टिकर्ता श्री विष्णु भी समुद्र में रहकर निरन्तर तपस्या करते रहते हैं।[12] अतः सभी को अपने कल्याण के लिए पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। इसमें पुरुषार्थ न करने वाले अथवा पापयुक्त कर्म में लीन रहने वाले मनुष्य को चेतावनी देते हुए कहा गया है कि, "यदि संसार में समस्त सुदुर्लभ सुख–भोग किसी पापी व्यक्ति को प्राप्त हो जाए तो भी वह उसके पास टिकता नहीं, शीघ्र अति शीघ्र उसे छोडकर चल देता है। जो मनुष्य लोभ व मोह में डूबा हुआ है, उसे दैव भी संकट से नहीं बचा सकता है"–

"पापमुत्सृजते लोके सर्वं प्राप्य सुदुर्लभम्।
लोभमोहसमापन्नं न दैवं त्रायते नरम्।।"[13]

महाभारत के अनुसार दैव–पुरुषार्थ पर आश्रित रहते हुए भी दैव तथा पुरुषार्थ परस्पर सम्बन्धित हैं। जिस प्रकार थोड़ी सी भी आग वायु का सहारा प्राप्त कर बहुत विकराल रूप धारण कर लेती है, ठीक उसी प्रकार पुरुषार्थ का सहारा पाकर दैव अधिक प्रभावी हो जाता है। जिस प्रकार तेल समाप्त होने पर दीपक बुझ जाता है, ठीक उसी प्रकार कर्म के क्षीर्ण होने पर दैव भी नष्ट (अप्रभावी) हो जाता है–

"यथाग्निः पवनोद्धूतः सुसूक्ष्मोऽपि महान् भवेत्।
तथा कर्मसमायुक्तं दैवं साधु विवर्धते।।
यथा तैलक्षयाद् दीपः प्रह्वासमुपगच्छति।
तथा कर्मक्षयाद् दैवं प्रह्वासमुपगच्छति।।"[14]

महाभारत के ही एक अन्य प्रसंग में अकमर्ण्य/अपरिश्रमी व्यक्ति को परिश्रम करने की शिक्षा देते हुए कहा गया कि, "इस जगत में उद्योगहीन मनुष्य कभी फलता–फूलता नहीं दिखायी देता। दैव में इतनी शक्ति नहीं है कि वह उसे कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग में लगा दे। जिस प्रकार शिष्य गुरु के पदचिन्ह का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ता है, ठीक उसी प्रकार दैव (भाग्य) भी पुरुषार्थ का अनुसरण करते हुए उसके पीछे–2 चलता है। व्यक्ति का स्वयं किया गया पुरुषार्थ ही उसके दैव को जहाँ–2 चाहता है, वहाँ–2 पर ले जाता है"–

"न च फलति विकर्मा जीवलोके न दैवं
व्यपनयति विभार्गं नास्ति दैवे प्रभुत्वम्।
गुरुमिव कृतमग्रयं कर्म संयाति दैवं
नयति पुरुषकारः संचितस्तत्र तत्र।।"[15]

महाभारत के स्त्रीपर्व के अन्तर्गत जलप्रदानिक पर्व में भी पुरुषार्थ (कर्म) पर बल देते हुए कहा गया है कि व्यक्ति को उसके कर्म के आधार पर ही सुख–दुःख एवं स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है–

"कर्मणा प्राप्यते स्वर्गः सुखं दुःखं च भारत।
ततो वहति तं भारमवशः स्ववशोऽपि वा।।"[16]

श्री रामचरित मानस में भी गोस्वामी तुलसी दास जी ने कर्म को ही प्रधानता दी है–

''करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करई सो तस फलु चाखा।।''[17]

श्रीमद्भगद्गीता में भी कर्म को प्रधानता देते हुए व्यक्ति को अपने पुरुषार्थों पर भरोसा रखकर सम्यक कर्म करने तथा उसके परिणाम के विषय में चिन्ता न करने की शिक्षा दी गई है–

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"[18]

इस प्रकार महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों में कर्म (पुरुषार्थ) को ही प्रमुखता दी गई है। इससे स्पष्ट पता चलता है कि यद्यपि दैव तथा पुरुषार्थ में पुरुषार्थ ही श्रेष्ठ है तथापि दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि परस्पर सहयोगी व घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं। महाभारत की ही भाँति मत्स्य पुराण के अध्याय 221 में भी मत्स्य– मनु संवाद के माध्यम से दैव एवं पुरुषार्थ को परस्पर अन्तर्संबंधित व एक दूसरे का सहयोगी मानते हुए दैव की तुलना में पुरुषार्थ को श्रेष्ठ बताया गया तथा स्वयं के कल्याण के लिए पुरुषार्थ पर ही आश्रित रहने का निर्देश दिया गया।[19] अतः प्रत्येक मनुष्य को निरन्तर सम्यक सत्कर्म करते रहना चाहिए, उसे पुरुषार्थी होकर लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को समृद्ध बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि पुरुषार्थ ही मनुष्य को मनवांछित फल की प्राप्ति करवाता है। पुरुषार्थ ही दैव का भी जनक है, इसी की सहायता से दैव, काल के संयोग के परिणामस्वरूप व्यक्ति की समस्त मनोकामना पूर्ण होती है। आधुनिक समय में जब समाज में निरन्तर नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। चोरी–डकैती, लूट, अपहरण, हत्या, बेईमानी, रिश्वतखोरी (भ्रष्टाचार), बलात्कार, व्यभिचार, तस्करी (कालाबाजारी), शुद्ध उत्पादों में मिलावट करके लाभ कमाना अथवा निम्न गुणवत्ता वाली वस्तुओं को उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं के स्थान पर विक्रय इत्यादि की घटनाएं तेजी से बढ़ रही हैं। आज भाई–भाई के ही खून का प्यासा हो रहा है, लोग तेजी से पैसा कमाने के चक्कर में अपने अति निकटम सगे सम्बन्धियों तक को धोखा देने तथा उनकी धन–सम्पत्ति हड़प लेने से भी पीछे नहीं हट रहे हैं, वे रातो–रात अमीर बन जाने व प्रसिद्धि प्राप्त कर लेने के दिवास्वप्न को पूरा करने के लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार हैं। लोग–भाग्यवादी, अवसरवादी एवं अकर्मण्य होते जा रहे हैं, वे सम्यक् पुरुषार्थ किए बिना ही शीघ्र अति शीघ्र सर्वस्व प्राप्त कर लेने की इच्छा मन में लिए निम्न से निम्नतम अनैतिक मार्ग पर भी पैर रखने को तैयार हैं। कई बार मनुष्य कठिन परिश्रम तो करता है परन्तु किसी कारण से यदि उसे आपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो पाता, तब वह स्वयं के भाग्य के ऊपर दोषारोपण करते हुए निराश हो जाता है तथा कुछ स्थिति में व्यक्ति नशाखोरी की तरफ भी अग्रसर होकर

अपना सर्वस्व नष्ट कर बैठता है। कई बार व्यक्ति लगातार मिल रही असफलता से दुःखी होकर आत्महत्या तक कर बैठता है तथा वह स्वयं की जीवनलीला समाप्त कर लेने के साथ–2 अपने निकटम् सगे–सम्बन्धियों को भी सामाजिक–आर्थिक तौर पर संकट की स्थिति में डाल देता है। अतः यदि समाज का प्रत्येक बुद्धिजीवी सदस्य महाभारत के अनुशासन पर्व में संकलित दैव तथा पुरुषार्थ सम्बन्धी शिक्षाओं को व्यवहारिक जीवन में अंगीकार कर ले, तो इस तरह की अप्रिय घटनाओं पर बहुत हद तक अकुंश लगाया जा सकता है तथा 'सोने की चिड़िया' कहा जाने वाला भारत अपने स्वर्णिम अतीत की गौरवशाली परम्परा को पुनर्जीवित करते हुए सही मायने में विश्वगुरु के पद पर आसीन हो सकता है।

निष्कर्ष–

मनुष्य की सफलता में दैव, पुरुषार्थ एवं समय तीनों का सन्तुलन आवश्यक है। यद्यपि दैव तथा पुरुषार्थ परस्पर पूरक, सहयोगी व सम्बन्धी हैं, तथापि दैव एवं पुरुषार्थ में से पुरुषार्थ ही श्रेष्ठ है। इसी को दैव का जनक भी समझा जा सकता है। अतः समाज के प्रत्येक बुद्धिजीवी सदस्य को अकर्मण्यता की स्थिति का त्याग करते हुए दैव/भाग्य की तुलना में पुरुषार्थ पर अधिक भरोसा रखते हुए सही दिशा में शास्त्रसंगत ढंग से यथोचित परिश्रम (पुरुषार्थ) करते रहना चाहिए क्योंकि समुचित पुरुषार्थ के सहारे ही व्यक्ति इहलौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के जीवन को श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम् बना सकता है। आधुनिक व उपभोक्तावादी युग में जब अधिकांश मनुष्य आलस्य से ओत–प्रोत होकर भाग्य पर आश्रित रहते हुए जीवन निर्वाह कर रहे हैं। समुचित पुरुषार्थ न करने के कारण जीवन में प्राप्त हो रहे कष्टों को वे नियति का परिणाम मानकर दुःखी मन से स्वीकार कर लेने को विवश हैं। समाज में लगातार नैतिकता का पतन हो रहा है। अनेक प्रकार की अप्रिय घटनाएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रहीं हैं। इस स्थिति में महाभारत के अनुशासन पर्व में वर्णित दैव तथा पुरुषार्थ सम्बन्धी यह सुन्दर शिक्षा अपनी सार्थकता सिद्ध करते हुए पुरुषार्थ विहीन समाज को पुरुषार्थ के पथ पर सम्यक् ढंग से चलने के लिए निश्चित रूप से प्रेरित करेगा। अतः कहा जा सकता है कि जनकल्याण के उद्देश्य से प्राचीन भारतीय ज्ञान का विश्वकोश समझे जाने वाले ग्रन्थ महाभारत में वर्णित दैव तथा पुरुषार्थ सम्बन्धी शिक्षा प्राचीन काल में प्रासंगिक, उपयोगी तथा अनुकरणीय तो था ही, साथ ही साथ आज के आधुनिक एवं वैज्ञानिक युग में भी यह प्रासंगिक, उपयोगी व अनुकरणीय ही है।

सन्दर्भ सूची

1. महाभारत (षष्ठ खण्ड), अनुशासनपर्व, दान–धर्म पर्व, अध्याय–6, श्लोक संख्या, 6–7, गीता प्रेस, गोरखपुर (उ०प्र०), पन्द्रहवाँ पुनर्मुद्रण संस्करण, सं० 2072
2. वही, श्लोक संख्या, 8
3. वही, श्लोक संख्या, 11
4. वही, श्लोक संख्या, 9–10
5. वही, श्लोक संख्या, 12–14
6. वही, श्लोक संख्या, 15
7. वही, श्लोक संख्या, 20
8. वही, श्लोक संख्या, 22,
9. वही, श्लोक संख्या, 23–39
10. वही, श्लोक संख्या, 40
11. वही, श्लोक संख्या, 41
12. वही, श्लोक संख्या, 18
13. वही, श्लोक संख्या, 42
14. वही, श्लोक संख्या, 43–44
15. वही, श्लोक संख्या, 47
16. महाभारत (चतुर्थ खण्ड), स्त्रीपर्व, अध्याय–4 (जलप्रदानिक पर्व), श्लोक संख्या, 11, गीता प्रेस, गोरखपुर, सातवाँ संस्करण, सं० 2053
17. श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 218/2, गीता प्रेस, गोरखपुर।
18. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/47, गीता प्रेस, गोरखपुर।
19. मत्स्य महापुराण, अध्याय, 221, श्लोक संख्या, 1–12, गीता प्रेस, गोरखपुर, चौदहवाँ पुनर्मुद्रण संस्करण, सं०, 2076